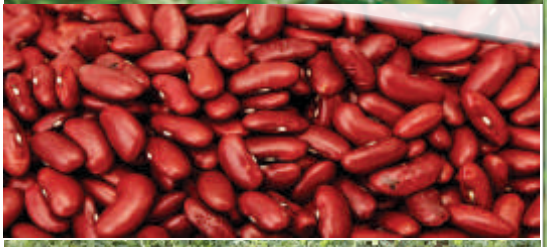

बिहार सरकार
कृषि विभाग

दलहन एवं तेलहन की वैज्ञानिक खेती

दलहन हमारे देश की खाद्य सामग्री में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। जलवायु परिवर्तन के दौर में टिकाऊ खेती, मृदा की उर्वराशक्ति को कायम रखने और पोषण सुरक्षा में दलहनी फसलों का अति महत्वपूर्ण योगदान है। भारतवर्ष में दलहन फसलों की उपज दिन प्रतिदिन घटती जा रही है। जबकि इसकी खपत बढ़ती आबादी के साथ बढ़ती जा रही है। भारतवर्ष की बढ़ती जनसंख्या की खाद्य आवश्यकताओं की आपूर्ति के लिए दलहन फसलों की उत्पादन बढ़ाने की आवश्यकता है। जैसा की हम जानते हैं बीज कृषि का आधार है यानि बीज सबसे प्रमुख निवेश है जिस पर अन्य सभी निवेशों के प्रभाव से अच्छी उपजकी प्राप्ति होती है। उन्नत किस्मों से अधिक उपज तभी हम प्राप्त कर सकते हैं जब हम उत्तम गुणवत्ता के बीज का उपयोग करेगें। गुणवत्तापूर्ण बीज आनुवांशिक रूप से शुद्ध बीज होता है, जिससे स्वीकृत मानकों के अनुसार अंकुरण होता है तथा नमी की मात्रा होती है। यह खरपतवारों, बीज–वाहित रोगों, कीटों आदि से भी मुक्त होता है। गुणवत्तापूर्ण बीजों से अच्छे अंकुरण, जल्दी होने वाले उद्‌भव और बढ़वार को सुनिश्चित करते हुए अच्छी उत्पादकता प्राप्त की जा सकती है।

बिहार में चना की खेती मुख्य रूप से टाल भूमि वाले क्षेत्रों में की जाती है तथा धान कटनी के बाद परती रहने वाले क्षेत्रों में होती है। बिहार में टाल भूमि को दाल का कटोरा भी कहा जाता है। चना दलहनी फसलों में अपना प्रमुख स्थान रखता हैं। बिहार में चना की खेती लगभग 61.30 हजार हेक्टेयर क्षेत्रफल में की जाती है, जिससे 70.30 हजार टन उत्पादन होता है। इसकी औसत उत्पादकता 1147 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर है जो इसकी उत्पादन क्षमता 2000–2500 कि0ग्रा0/हेक्टेयर से बहुत कम है। शाकाहारी मनुष्यों के भोजन में चना का स्थान प्रोटीन देने वाले एक प्रमुख स्त्रोत के रूप में है। चना एक दलहनी व औषधीय गुण वाली फसल हैं। इसका उपयोग खून प्यूरिफिकेशन में होता हैं। चने में 21.1 प्रतिशत प्रोटीन 61.1 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट 4.5 प्रतिशत वसा एवं प्रचुर मात्रा में कैल्शियम, लोहा एवं नियासिन पाये जाते हैं। इसकी जड़ों में उपस्थित नाइट्रोजन (नेत्रजन) स्थिरीकरण करने वाले जीवाणु वायुमण्डल में उपस्थित नेत्रजन का यौगिकीकरण करके भूमि की उर्वराशक्ति में वृद्धि करते हैं। चना की गहरी झकड़ा जड़ें भूमि में काफी गहराई तक जाती हैं जिससे मृदा में वायु संचार अच्छी प्रकार से होता है। इस प्रकार चना का मानव स्वास्थ्य के साथ–साथ टिकाऊ खेती में भी महत्वपूर्ण स्थान है। चने के दो विशिष्ट प्रकार होते है देसी चना तथा काबुली चना।

किस्मों का चुनाव

चना के किस्मों का चयन मौसम के अनुसार उन्नत एवं अधिक उपज देने वाली,कृषि जलवायु के आधार पर संस्तुत प्रजातियों का ही चुनाव करनी चाहिये। इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि जिन किस्मों का आपने चयन किया है वह आपके क्षेत्र के लिए अधिसूचित हो और साथ ही साथ रोग एवं कीट रोधी क्षमता भी हो। किसान भाई मुख्यतः प्रमाणित बीज ही अपने खेतों में बोते है। बीज उत्पादन के लिये यदि आधारीय बीज लें तो सर्वोत्तम है। आधारीय बीज की सत्यता तथा गुणवत्ता प्रमाणित बीज से अपेक्षाकृत अच्छी होती है। इसका मूल्य भी प्रमाणित बीज की अपेक्षा थोड़ा अधिक होता है। इसके लिये बीज प्रमाणीकरण संस्था टी.डी.सी. (तराई विकास निगम) एन.एस.सी (राष्ट्रीय बीज निगम) से बीज लेकर ही

बोयें। यहाँ से प्रजनक से आधारीय बीज तैयार होता है उसके बाद प्रमाणित बीज होता है।

बीज किस्म का विमोचित एवं अधिसूचित होना :– जिस किस्म के बीज का प्रमाणीकरण होना हो उस किस्म का केन्द्रीय अथवा प्रादेशिक किस्म विमोचन समिति द्वारा विमोचित होना तथा अधिसूचित ना हो, उसका बीज प्रमाणीकरण नहीं हो सकता है।

खेत का चयन : बीज फसल के लिए खेत का चयन करते समय यह ध्यान रखा जाता है कि खेत की स्थिति, बीज फसल की पृथक्करण आवश्यकताओं के अनुरुप हो और खेत में पिछले वर्ष वही फसल न उगायी गयी हो। खेत स्वयं उगे, अन्य पौधों व खरपतवारों से मुक्त हो व खेत की मृदा की किस्म व उर्वरता बीज फसल के अनुरुप होने के साथ–साथ मृदा जन्य कीड़ों व रोगों से मुक्त हो।

खेत की तैयारी : चना के लिए खेत की मिट्टी बहुत ज्यादा महीन या भुरभुरी नहीं होनी चाहिए तथा न ही बहुत ज्यादा दबी हुई। अच्छी खेती के लिए भूमि की सतह ढीली और ढेलेदार होनी चाहिए। जड़ों की समुचित वृद्धि के लिए भूमि की गहरी जुताई करना लाभप्रद होता है। इसके लिए खरीफ की फसलकाटने के पश्चात एक गहरी जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से कर देनी चाहिए। इसके बाद, बुआई के लिए खेत को तैयार करते समय 2–3 जुताई देशी हल या कल्टीवेटर से करनी चाहिए। बड़े ढ़ेलों को तोड़ने तथा खेत को समतल बनाने के लिए पाटा लगाना चाहिए। खेत की तैयारी के समय अन्तिम जुताई करने से पूर्व 25 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से कलोरोपायरीफॉस दवा भली–भांति मिला देना चाहिए जिससे मिट्टी में मौजूद हानिकारक कीट नष्ट हो जाएं तथा फसल को दीमक आदि से बचाया जा सके। जहाँ तक सम्भव हो क्षारीय एवं उच्च भूमिगत जल वाले खेतों में चना की खेती नहीं करनी चाहिए।

बीजोपचार : (अ). रोग एवं कीटनाशी रसायनों से बीजोपचार उकठा रोग से फसल के बचाव हेतु 2.5 ग्राम थीरम या 1 ग्राम बैविस्टीन अथवा 1.5 ग्राम थीरम तथा 0.5 ग्राम बैविस्टीन के मिश्रण से प्रति किलोग्राम बीज को उपचारित करना चाहिए। जिन क्षेत्रों में दीमक का प्रकोप अधिक होता है, उन खेतों में 20 ई.सी. क्लोरीपायरीफॉस को पानी में घोलकर प्रति 100 किलोग्राम बीज को उपचारित करके बोना लाभप्रद होता है।

(ब). जीवाणु संवर्धन (राइजोबियम कल्चर) से बीजोपचार विभिन्न दलहनों के लिए अलग–अलग तरह का राइजोबियम कल्चर होता है। अतः चना के बीजों को उपचारित करने के लिए संस्तुत राइजोबियम कल्चर का ही प्रयोग करना चाहिए। एक पैकेट राइजोबियम कल्चर (200 ग्राम) 10 कि.ग्रा. बीज को उपचारित करने के लिए पर्याप्त होता है। 100 ग्राम गुड़ अथवा चीनी को आधा लीटर पानी में घोल लेना चाहिए। घोल को गर्म करके ठण्डा कर इसमें एक पैकेट राइजोबियम कल्चर को अच्छी तरह डण्डे से चलाकर मिला देना चाहिए। बाल्टी या घड़े में 10 कि.ग्रा. बीज डालकर घोल में मिला देना चाहिए। ताकि राइजोबियम बीज की सतह पर चिपक जाए। इस प्रकार राइजोबियम कल्चर से सने हुए बीजों को कुछ देर तक छांव में सुखा लेना चाहिए। जहाँ तक सम्भव हो बीजोपचार सायंकाल में करें ताकि तेज धूप में बीजों के सूखने की सम्भावना न रहें। धूप में बीजों को सुखाने से राइजोबियम जीवाणु मर जाते हैं जिससे वांछित लाभ नहीं मिलता है।

(स). पी.एस.बी. कल्चर (फास्फेट साल्यूबिलाइजिंग बैक्टीरिया) से बीजोपचार राइजोबियम

कल्चर की भांति ही फास्फेट घुलनशील बैक्टीरिया (पी.एस.बी.) कल्चर के पैकेट भी उपलब्ध रहते हैं। जिन्हें बाजार या कृषि विश्वविद्यालयों से खरीदा जा सकता है। राइजोबियम कल्चर से बीजोपचार की तरह ही पी.एस.बी. कल्चर से बीजोपचार करना चाहिए।

बुआई का समयः समस्त बिहार राज्य में चने की बुआई 20 अक्टूबर से 30 नवम्बर तक की जाती है लेकिन टाल और दियरा क्षेत्रों में इसकी बुआई 10 अक्टूबर से 10 नवम्बर तक कर देते हैा विलम्ब प्रभेद के बीज उत्पादन के लिये इसकी बुआई 15 दिसम्बर तक कर सकते है। बीज उत्पादन के लिए बुआई पंक्ति में आवश्यक है, जिससे इंटरकल्चर संचालन, रोगिंग और फसल निरीक्षण की सुविधा देता है। बुआई सीड ड्रिल से करनी चाहिए। भूमि में नमी की जांच के लिए थोड़ी–सी मिट्टी मुट्ठी में लेकर दबानी चाहिए, यदि गोला बन जाए तो समझना चाहिए कि खेत में पर्याप्त नमी है। गोले को जमीन पर लगभग 2–3 फुट की ऊंचाई से खेत में गिराने पर यदि गोला न टूटे तो समझना चाहिए कि खेत में ज्यादा नमी है। ऐसी स्थिति में खेत में बुआई नहीं करनी चाहिए। यदि बुआई करनी ही पड़े तो पाटा दूसरे दिन तथा हल्का–सा ही लगाना चाहिए अन्यथा पौधों का जमाव कम होता है। यदि खेत में नमी कुछ कम हो तो बीज का नमी से अच्छा सम्पर्क बनाने के लिए बुआई गहराई में करनी चाहिए तथा उसके उपर पाटा अच्छी तरह लगा देना चाहिए। ऐसा करने से अँकुरण पूरे खेत में अच्छा एवं समान रूप से होता है। अन्य फसलों की तरह चना की अच्छी उपज लेने के लिए खेत में पौधों की समुचित संख्या का होना अत्यन्त आवश्यक है। साधारणतया पौधों की संख्या 25 से 30 प्रति वर्ग मीटर के हिसाब से रखी जाती है। इसके लिए पंक्तियों (कूड़ों) के बीच की दूरी 30 से.मी. तथा पौधों के मध्य दूरी 10 से.मी. रखी जाती है।

बीज दर : चना के बीज की मात्रा दानों के आकार (भार), बुआई के समय एवं ढंग और भूमि की उर्वराशक्ति पर निर्भर करती हैं। यदि प्रजाति बड़े दाने वाली है तब प्रति हैक्टेयर 80–100 कि.ग्रा./हे. कि.ग्रा./हे., छोटे दाने वाली प्रजातियों का बीज 70–80 कि.ग्रा. प्रति हेक्टयर के हिसाब से बोना चाहिए।

खाद एवं उर्वरक : प्रारम्भिक अवस्था में खेत की तैयारी के समय 20 किलोग्राम नेत्रजन, 40 किलोग्राम स्फुर, 20 किलोग्राम पोटाश 20 किलोग्राम सल्फर प्रति हेक्टेयर की दर से देना उपयुक्त है।

संदूषण श्रातों से पृथक्करण दूरी : बीज फसल को परागण द्वारा होने वाले संदूषण, कटाई व गहराई के समय अन्य बीजों के मिश्रण तथा रोगों के फैलाव की रोकथाम के लिए निश्चित दूरी पर उगाया जाता है। यह दूरी बीज फसल की परागण विधि व बीज वर्ग (आधार व प्रमाणित बीज) के आधार पर निर्धारित की जाती है। चना एक स्वपरागित फसल है , परागण द्वारा होने वाले संदूषण से बचाने हेतु आधार बीज के लिये पृथक्करण दूरी 10 मीटर तथा प्रमाणित बीज के लिए 5 मीटर रखते हैं जब बीज फसल को भिन्न फसल के खेतों से अपेक्षित दूरी पर उगाना संभव नहीं हो तो बीज फसल व निकटस्थ भिन्न फसल में पुष्पन भिन्न समय पर हो। भिन्न किस्मों के बीजों को कटाई के बाद अलग रखा जाता है और गहराई व संसाधन क्रियाएँ भी अलग–अलग की जाती है, जिससे याँत्रिक मिश्रण न होने पाये।

खरपतवार नियंत्रण : बुआई के 25 से 30 दिनों के बाद पहली निकौनी की जरुरत होती है,

दूसरी 45 से 50 दिन के बाद पेन्डीमेंथलिन 30 ई० सी० 3.3 लीटर दवा चने के जमाए से पूर्व प्रयोग में लाये जाने वाला खरपतवार नासी है जिसके 3. 0 लीटर मात्रा प्रति हेक्टेयर की दर से 700 – 800 लीटर पानी में घोलकर बोने के 3 दिन के अन्दर छिड़काव करना चाहिए।

चना के उन्नत व अनुशंसित प्रजातियां एवं समय से बुआई के लिए प्रभेद :

उन्नत प्रभेद	बुआई का समय	परिपक्वता अवधि दिनों में	औसत उपज (क्विं / हेक्टेयर)	विशेषताएं
सबौर चना–1	1 नवम्बर से 30 नवम्बर	130–135	22–24	उकठा, शुष्क जड़ विगलन स्तंभन (स्टन्ट)रोगों के प्रति मध्यम प्रतिरोधी, फली छेदक के प्रति मध्यम प्रतिरोधी
जी.एन.जी. 2207	1 नवम्बर से 30 नवम्बर	128–130	16–17	उकठा रोग के प्रति मध्यम प्रतिरोधी
बी. जी. 3043	1 नवम्बर से 30 नवम्बर	127–134	16–17	उकठा रोग के प्रति मध्यम प्रतिरोधीं
जी.सी.पी. 105	1 नवम्बर से 30 नवम्बर	140–145 दिनों में	18–20	मध्यम दाना (18 ग्राम/100 दानों का वजन), उकठा रोग रोधी।
डी.सी.पी. 92–3	1 नवम्बर से 30 नवम्बर	145–150 दिनों में	19–20	मध्यम दाना (17 ग्राम/100 दानों का वजन), उकठा के प्रति रोगरोधी।
के. डब्लू. आर. 108	1 नवम्बर से 30 नवम्बर	130–135 दिनों में	20–23	उत्तरी तथा दक्षिणी बिहार, छोटा दाना ,उकठा के प्रति रोगरोधी।
. पूसा 256	1 नवम्बर से 30 नवम्बर	145–150 दिनो में	18–20	बड़ा दाना (100 दानों का वजन 25 ग्राम),उकठा रोग के प्रति सहिष्णु
देर से बुआई के लिये प्रभेद :				
सबौर चना–2	15 दिसम्बर तक	115–120 दिनों में	18–19 क्विंटल/हेक टेयर	क्षेत्र :–पछेती बुआई की स्थिाति के लिए उपयुक्त किस्म,उकठा, जड–गलन रोगों तथा फली छेदक कीट के प्रति मध्यम प्रतिरोधी
उदय (के.पी.जी. 59)	15 दिसम्बर तक	130–135 दिनों में	20–22 क्विंटल/हेक्टेयर	क्षेत्र :उतरी बिहार, उकठा जड गलन एवं फली छेदक के प्रति सहिष्णु।
बी.जी. 372 (पूसा 372)	15 दिसम्बर तक	130–140 दिनों में	15–20 क्विंटल/हेक्टेयर	क्षेत्र :– पूरा बिहार, छोटा दाना (100 दानो का वजन 13 ग्राम), उकठा, जड़ गलन एवं फली छेदक प्रति सहिष्णुता।
पी.जी. 186	15 दिसम्बर	128–135 दिनों में	18–20 क्विंटल प्रति हेक्टेयर	छोटा दाना (100 दानों का वजन 14 ग्राम), उकठा ,जड़ गलन एवं फली छेदक के प्रति सहिष्णुता।
जे.जी 14	15 दिसम्बर तक	125–135 दिनों में	15–18 क्विंटल प्रति हेक्टेयर	बड़ा दाना (100 दानों का वजन 28 ग्राम), उच्च ताप के प्रति सहिष्णुता।

सिंचाई : अलग–अलग क्षेत्रों में भिन्न–भिन्न प्रकार के मिट्टी के अनुसार सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है। सिंचाई प्रायः चना की खेती असिंचित दशा में की जाती है। संचित क्षेत्रों में यदि भूमि में पर्याप्त नमी न हो तो पलेवा देकर बुआई करनी चाहिये। ताकि बीज का जमाव अच्छा हो। शीतकालीन वर्षा के अभाव में अधिक सूखा होने पर फलियॉ में दाना बनते समय, एक हल्की सिचाई करने से उपज में वृद्धि होती है। पहली सिंचाई बहुत कम पानी खेत में लगाना चाहिए और बुआई के 45 दिन बाद करें दूसरी सिंचाई फली बनते समय करना चाहिए।

अवांछनीय पौधों को निकालना : चना बीज फसल उत्पादन के दौरान समय – समय पर खेत से अन्य किस्मों के पौधे, खरपतवार व रोगी पौधों को निकालते रहना चाहिए। ऐसा करने से आनुवांशिकी शुद्धता बनी रहती है। चुने हुए पौधों को जड़ से उखाड़ कर किसी थैले में बंद कर खेत से बाहर ले जाकर, गड़ढे में दबा देना या जला देना चाहिए।

रोग एवं कीट नियंत्रणः चना के बीज उत्पादन में उकठा रोग नियंत्रण के लिए फसल चक्र अपनाना चाहिए तथा बीज को 2. 5 ग्राम कार्बेन्डाजिम प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचारित करना चाहिए तथा रोग प्रतिरोधी किस्मों को लगाना चाहिए। बीज फसल को रोग कीट पतंगों से मुक्त रखने के लिए समय समय पर आवश्यकतानुसार कीटनाशकों व फफूँदनाशकों का छिड़काव करते रहना चाहिए। बीज जनित कीड़ों व रोगों से बीज फसल को बचाने के बीज उपचार करना अति आवश्यक है। फफूँदनाशकों से सबसे अत्यधिक प्रयोग होने वाला फफूँदनाशी कार्बेन्डाजीम एवं थीरम है, जिसको मिला कर 1+2 ग्रा. प्रति कि.ग्रा. बीज दर से प्रयोग किया जाता है। चना के रोगरोधी किस्मों को लगाना चाहिए। परन्तु जरुरत पड़ने पर फली छेदक कीट प्रबंधन के लिये फेरोमोन ट्रैप 10 ट्रैप प्रति हेक्टर लगाये। रासायनिक विधि से कीट नियंत्रण हेतु स्पीनोसैड 45.5 एस. एल./1 मि०ली० प्रति 5 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करना चाहिए। रासायनिक दवाओं में प्रोफेनोफॉस 50 ई. सी./1 मि०ली० प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करना चाहिए। असिंचित दशा में फेनवेलोरेट 4 प्रतिशत धूल या क्वीनलफॉस 2 प्रतिशत धूल का 20 कि० ग्रा ० प्रति हेक्टेयर की दर से भुरकाव करना चाहिए।

कटाई एवं मड़ाई : कटाई एवं मड़ाई बीज फसल की कटाई उचित समय पर करना अति आवश्यक क्रिया है। सही समय पर कटाई करने से बीज में न ज्यादा नमी रहती है और ना ही ज्यादा शुष्कता होती है। सम्भवतः यह प्रयास करना चाहिए की यंत्र संबंधी विभिन्न प्रकार के प्रभेदों का मिश्रण ना हों। यह उचित होगा कि कटाई एवं गहाई की प्रक्रिया किसी प्रशिक्षित व्यक्ति की निगरानी में हों। चना की बीज फसल फल की कटाई विभिन्न क्षेत्रों में जलवायु, तापमान, आर्द्रता एवं दानों में नमी के अनुसार विभिन्न समयों पर होती है। सामान्य रूप से जब चना के पौधों से पत्तियां झड़ जाती हैं या पीली अथवा हल्की भूरी हो जाती हैं, फसल की कटाई कर ली जाती है। फली से दाना निकालकर यदि दांत से काटा जाए और कट की आवाज आए, तब समझना चाहिए कि चना की फसल कटाई के लिए तैयार है। फसल के अधिक पककर सूख जाने से कटाई के समय फलियाँ टूटकर खेत में गिरने लगती हैं, जिससे काफी नुकसान होता है। काटी गयी फसल को एक स्थान पर इकट्ठा करके खलिहान में 4–5 दिनों तक सुखाकर मड़ाई की जाती है।

बीज परीक्षण : बीज की भौतिक एवं आनुवंशिक शुद्धता, अंकुरण प्रतिशत, व नमी मात्रा के लिए परीक्षण की जाती है। परीक्षण में पाये गये आंकड़ों को एक आंकलन पत्र में लिखा जाता है। यह आकलन पत्र बीज की गणुवत्ता को दर्शाता है।

बीज भंडारण : बीज भंडारण के पूर्व बीज की नमी को जानना बेहद जरूरी है। अगर नमी ज्यादा है तो बीज को अच्छे तरीके से सुखा लेना चाहिए ताकि उसकी नमी की मात्रा 9 प्रतिशत से अधिक न रहे। जब बीजकी वाष्प रहित पात्र में भंडार के लिए रखना हो तो नमी की मात्रा 8 प्रतिशत ही रहना चाहिए। भंडारण के दौरान कोई कीट पतंगा ना लगे, इसके लिए बीज को सुखा बीज उपचार करके रखना चाहिए। बीजभंडार में साफ–सफाई का पुरा ध्यान रखना चाहिए। समय समय पर भंडार गृह को धुँआ (फ्यूमीगेशन) लगाते रहना चाहिए। अतः प्रदेश में खाद्य सुरक्षा के लिए एक योजनाबद्ध और मजबूत बीज उत्पादन प्रणाली अनिवार्य है।

वना के बीज उत्पादन में आधार और प्रमाणित बीज के लिए न्यूनतम मानक और बीज मापदंड

पैरामीटर्स	बीज की श्रेणी	
	आधारीय बीज	प्रमाणित बीज
पृथक्करण दूरी (मीटर में)	10	5
निरीक्षण की संख्या	2	2
अंकुरण (हार्ड बीज सहित) (प्रतिशत में)	85	85
शुद्ध बीज (प्रतिशत में)	98	98
अक्रीय पदार्थ (प्रतिशत में)	2	2
बीज जनित रोगों से प्रभावित पौध (प्रतिशत में)	0.1	0.2
ऑफ–टाइप (प्रतिशत में)	0.1	0.2
अन्य फसलों के बीजों की संख्या (संख्या प्रति किलो)	कोई नहीं	5
अन्य अलग–अलग किस्म के बीज (संख्या प्रति किलो)	5	10

मसूर की वैज्ञानिक खेती

मसूर उगाने के लिए भूमि का चयन

मसूर वर्षा आधारित फसल होने के कारण ऐसी मिट्टी वाले खेतों का चयन करना चाहिए जिसमें नमी का संरक्षण हो, दोमट से भारी भूमि इसके लिऐ अधिक उपयुक्त है हल्की एवं क्षारीय भूमि इसकी खेती के लिए उपयुक्त नहीं होती है हल्की भुमि में कई बार सिचाई करनी पड़ती हैं मिट्टी का पीएच मान 65 से 70 के बीच होना चाहिए तथा जल निकास की व्यवस्था होनी चाहिए अन्यथा पौधों के बढवार एवं उपज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है

मसूर की खेती के लिए जलवायू

यह रबी मौसम की फसल है अतः ठंडी जलवायू इसके लिये उपयुक्त है इसे समुद्र तल से तीन हजार मीटर ऊचांई वाले क्षेत्रों में भी सफलता पूर्वक उगांया जा सकता है परन्तु अत्यन्त ठंड एवं पाला पड़ने वाले स्थानों पर मसूर की उपज पर प्रतिकूल असर पड़ता है बीज के विकास पर विपरीत प्रभाव पड़ने से बाजार में उचित मूल्य नहीं मिलता है।

मसूर बुआई का समय

हमारे देश में अंसिचित अवस्था में खरीफ की फसल की कटाई के बाद नमी उपलब्ध रहने पर अक्टूबर के प्रथम सप्ताह से नबम्बर के प्रथम सप्ताह तक मसूर की बोनी करना चाहिए। सिंचित अवस्था में बोनी मध्य अक्टूबर से मध्य नबम्बर तक की जा सकती है। मध्य नबम्बर के पश्चात बोनी करने से उपज कम मिलती है क्योकि 15 फरवरी से ही तापक्रम की वृद्धि होने लगती है जिसके दुष्प्रभाव के कारण समय से पूर्व फसल पकने लगती है जिससे बीज छोटा हो जाता है एवं साथ में कई बीमारियां भी आती है अतः समय पर बोनी अति आवश्यक है।

भूमि की तैयारी

जब खरीफ मे पर्याप्त वर्षा न हो तो खेत में बुआई के पहले सिचांई करें, जब खेत में वतर आ जाये तब दो–तीन बार हल्की जुताई करके बखरनी करें तथा पाटा चलाकर खेत को समतल करें। जिससे नमी संरक्षित रहें। मसूर के लिये अधिक भुरभुरी व बारीक मिट्टी की आवश्यकता होती है जिससे अकुंरण अच्छा होता है।

मसूर की किस्में

किस्में	पकने की अवधि दिनों में	औसत उपज क्विं.हे.
IPL 316	120-125	12-15
IPL 220	115-120	12-15
L4717	130-135	14-16
HUL&75	130-135	10-22
HUL-57	110-120	12-15

मसूर बुआई के लिए बीज की मात्रा

मसूर का विपुल उत्पादन पाने के लिए पौधों की संख्या का पर्याप्त होना आवश्यक है इसके लिए बड़े दानों वाली जाति का 50–60 किग्राम एवं छोटे दाने वाली जाति का 35–40 किग्रा बीज प्रति हेक्टेयर बोना चाहिए।

बोआई कतार में करना चाहिए, कतार से कतार की दूरी 30 सेमी रखना चाहिए। देरी से बुआई करने पर 20–25 सेमी कतारों की दूरी रखना चाहिए, बुआई नारी या सीड ड्रिल से 5–6 सेमी की गहराई पर उपयुक्त होती है।

मसूर बुआई पुर्व मृदा उपचार

गर्मी में गहरी जुताई करें। मृदा जनित रोगों से बचने के लिए यह अति आवश्यक तकनीक है इसके लिए दो किग्राम ट्राइकोडरमा विरडी या ट्राइकोडरमा हारजीयानम को 100 किग्रा गोबर की सड़ी खाद या बायो गैस स्लरी में मिलाकर नम करके एक सप्ताह तक ढ़ककर अधेंरे स्थान में रखें तत्पश्चात बुआई से पूर्व खेत में फैलायें जिससे मृदा जनित रोगों की रोकथाम हो जाये।

बीजोपचार

मसूर में मुख्य रूप से उकठा रोग का प्रकोप होता है जिससे कभी कभी सतप्रतिशत हानि हो जाती है अतः इस लिये बुआई के लिए बीजोपचार अति आवश्यक है दो ग्राम थीरम एवं 1 ग्राम कार्बेन्डाजिम से के अनुपात में मिलाकर प्रति किलों बीज की दर से उपचारित करें

तत्पश्चात 5 ग्राम राईजोवियम एवं 5 ग्राम पीएसवी कल्चर प्रतिकिलों ग्राम बीज की दर से मिलाकर थोडा पानी छिडकर अच्छी तरह से मिलायें जिससे कल्चर बीज से चिपक जायें इस तरह बीजोपचार के बाद बीज को छाया में सुखा कर फिर बोनी करें।

खाद एवं उर्वरक

मृदा उपचार के बाद मिट्टी परीक्षण के आधार पर की गई अनुसंशा के अनुसार ही खाद उर्वरक देना चाहिए । 100–125 क्वि प्रति हेक्टेयर के हिसाब से गोवर की खाद या कम्पोस्ट खाद अवश्य देना चाहिए। गोबर खाद देने पर उर्वरकों की मात्रा आधी करना उचित होगा सिंचित फसल के लिये 20–25 किग्रा नत्रजन एवं 30–40 किग्रा स्फुर का उपयोग प्रति हेक्टेयर करना चाहिये। गंधक की कमी वाले क्षेत्रों में 20 किग्राम गंधक सिंगल सुपर फास्फेट देना चाहिए।

मसूर की सिंचाई

सामान्यत : मसूर की फसल असिंचित क्षेत्रों में ही ली जाती है। इसलिए यदि सिंचाई सुलभ हो तो बुआई पलेवा लगाकर करना चाहिए इससे मिटटी में नमी बनी रहती है एंव अकुरण अच्छा होता है मसूर में इसके बाद सिचांई की आवश्यकता नहीं होती है अगर पानी उपलब्ध हो तो एक सिंचाई फूल आने के पहले (बोनी के 40–45 दिन बाद) देने से उपज अच्छी होती है। यदि बरसात हो जाए तो सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है अधिक सिंचाई मसूर को हानि पहुचां सकती है।

निंदाई-गुडाई

रासायनिक खरपतवार नियंत्रण के लिए बुआई से पूर्व फ्लूक्लोरेलिन 0.75 किग्रा सक्रिय तत्व

प्रति हेक्टेयर 600 लि पानी में घोलकर छिडकाव करें। इस फसल में बोनी के बाद 50 दिनो तक खरपतवारों को नियंत्रण में रखना चाहिए नही तो इसकी बढवार में दुष्प्रभाव पड़ेगा। मसूर में खरपतवार की समस्या सिंचित फसल या मावट की वर्षा होने पर हो सकती है ऐसी स्थिति में 'हो यंत्र' एवं 'हो साइकिल यंत्र' चलाकर खरपतवार नियंत्रण करना चाहिए इससे गुडाई भी हो जाएगी भुमि में वायु संचार बढ़ेगा जो कि स्वास्थ के लिये अति आवश्यक है ।

मसूर में रोग नियंत्रण

मसूर में मुख्य रूप से उकठा रोग का प्रकोप होता है इसके लिय मृदा उपचार एवं बीजोपचार अति आवश्यक है किस्मों के चयन में सिर्फ उकठा प्रतिरोधी जातियों का ही चयन करें, फसल चक्र बदलने से भी उक्टा रोग कम हो सकता है। कभी– कभी गेरूआ रोग का भी प्रकोप होता है इसके नियंत्रण के लिए 12–5 ग्राम डायथिन एम 45 प्रतिलिटर पानी के हिसाब से घोल बनाकर फसल में छिडकाव करना चाहिए। गेरूआ प्रभावित क्षेत्रों में एल–4076 गेरूआं निरोधक जाति बोयें।

मसूर में कीट नियंत्रण

मसूर में फली छेदक कीट पत्ती छेदक एवं माहों का प्रकोप होता है इसके लिए मोनो क्रोटोफॉस 1 मिली लिटर लिटर पानी में या मैटासिटाक्स 15 मिली लिटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें। फली छेदक कीटों के लिए क्विनाल फास 1 मिली पानी के हिसाब से घोल बनाकर छिड़काव करने से कीट नियंत्रित हो जाते है।

कटाई एवं गहाई

परिपक्व अवस्था में मसूर की फसल हरे से भुरे रंग की होने लगती है। तब फसल की कटाई सुबह जब थोड़ी ठंड एवं नमी रहती है, तब करना चाहिए जिससे बीज कम झडते है। फसल को काटकर खलिहान में अच्छे से सुखाना चाहिए। फिर डंडों से पीटकर एवं बैलों से गहाई करवाकर पंखे से साफ करनाा चाहिए दांतों के बीज को रखकर काटने से यदि कट की आवाज आये तो भण्डारण के लिये उचित मानना चाहिये।

मसूर की उपज

कृषि की उन्नत तकनीकों को अपनाकर मसूर फसल से विपुल उत्पादन प्राप्त कर सकतें हैं। किस्म के अनुसार वारानी क्षेत्रों में 8–10 क्विंटल व सिंचाई करने पर 15–16 क्विंटल मसूर की उपज प्रति हेक्टेयर प्राप्त होती है।

मटर की वैज्ञानिक खेती

मटर उगाने वाले प्रदेशों में उत्तर प्रदेश प्रमुख हैं। उत्तरप्रदेश में 4.34 लाख हेक्टेयर क्षेत्र में मटर उगाई जाती है, जो कुल राष्ट्रीय क्षेत्र का 53.7% है। इसके अतिरिक्त मध्य प्रदेश में 2.7 लाख हे., उड़ीसा में 0.48 लाख., बिहार में 0.28 लाख हे. क्षेत्र में मटर उगाई जाती है।

उत्पादन तकनीक

भूमि की तैयारी– मटर की खेती विभिन्न प्रकार की मृदाओं में की जा सकती है, फिर भी गंगा के मैदानी भागों की गहरी दोमट मिट्टी इसके लिए सबसे अच्छी रहती है। मटर के लिए भूमि को अच्छी तरह तैयार करना चाहिए। खरीफ की फसल की कटाई के बाद भूमि की जुताई मिट्टी पलटने वाले हल करके २–3 बार हैरो चलाकर अथवा जुताई करके पाटा लगाकर भूमि तैयार करनी चाहिए। धान के खेतों में मिट्टी के ढेलों को तोड़ने का प्रयास करना चाहिए। अच्छे अंकुरण के लिए मिट्टी में नमी होना जरुरी है।

फसल पद्धति– सामान्यतः मटर की फसल, खरीफ ज्वार, बाजरा, मक्का, धान और कपास के बाद उगाई जाती है। मटर, गेंहूँ और जौ के साथ अंतः पसल के रूप में भी बोई जाती है। हरे चारे के रूप में जई और सरसों के साथ इसे बोया जाता है। बिहार एवं पश्चिम बंगाल में इसकी उतेरा विधि से बुआई की जाती है।

बीजोपचार : उचित राजोबियम संवर्धक (कल्चर) से बीजों को उपचारित करना उत्पादन बढ़ाने का सबसे सरल साधन है। दलहनी फसलों में वातावरणीय नाइट्रोजन के स्थिरीकरण करने की क्षमता जड़ों में स्थित ग्रंथिकाओं की संख्या पर निर्भर करती है और यह भी राइजोबियम की संख्या पर भी निर्भर करता है। इसलिए इन जीवाणुओं का मिट्टी में होना जरुरी है। क्योंकि मिट्टी में जीवाणुओं की संख्या पर्याप्त नहीं होती है, इसलिए राईजोबियम संवर्धक से बीजों को उपचारित करना जरूरी है।

राईजोबियम से बीजों को उपचारित करने के लिए उपयुक्त कल्चर का एक पैकेट (250 ग्राम) 10 किग्रा. बीज के लिए पर्याप्त होता ही। बीजों को उपचारित करने के लिए 50 ग्राम गुड़ और २ ग्राम गोंद को एक लीटर पानी में घोल कर गर्म करके मिश्रण तैयार करना चाहिए। सामान्य तापमान पर उसे ठंडा होने दें और ठंडा होने के बाद उसमें एक पैकेट कल्चर डालें और अच्छी तरह मिला लें। इस मिश्रण में बीजों को डालकर अच्छी तरह से मिलाएं, जिससे बीज के चारों तरफ इसकी लेप लग जाए। बीजों को छाया में सुखाएं और फिर बोयें। क्योंकि राइजोबियम फसल विशेष के लिए ही होता है, इसलिए मटर के लिए संस्तुत राईजोबियम का ही प्रयोग करना चाहिए। कवकनाशी जैसे केप्टान, थीरम आदि भी राईजोबियम कल्चर के अनुकूल होते हैं। राइजोबियम से उपचारित करने के 4–5 दिन पहले कवकनाशियों से बीजों का शोधन कर लेना चाहिए।

बुआई के समय– मटर की बुआई मध्य अक्टूबर से नवम्बर तक की जाती है जो खरीफ की फसल की कटाई पर निर्भर करती है। फिर भी बुआई का उपयुक्त समय अक्टूबर के आखिरी सप्ताह से नवम्बर का प्रथम सप्ताह है।

बीज–दर, दूरी और बुआई– बीजों के आकार और बुआई के समय के अनुसार बीज दर अलग–अलग हो सकती है। समय पर बुआई के लिए 70–80 किग्रा. बीज/हे. पर्याप्त होता है। पछेती बुआई में 90 किग्रा./हे. बीज होना चाहिए। देशी हल जिसमें पोरा लगा हो या सीड ड्रिल से 30 सेंमी. की दूरी पर बुआई करनी चाहिए। बीज की गहराई 5–7 सेंमी. रखनी चाहिये जो मिट्टी की नमी पर निर्भर करती है। बौनी मटर के लिए बीज दर 100 किलोग्राम/हे. उपयुक्त है।

उर्वरक – मटर में सामान्यतः 20 किग्रा, नाइट्रोजन एवं 60 किग्रा. फास्फोरस बुआई के समय देना पर्याप्त होता है। इसके लिए 100–125 किग्रा. डाईअमोनियम फास्फेट (डी, ए,पी) प्रति हेक्टेयर दिया जा सकता है। पोटेशियम की कमी वाले क्षेत्रों में 20 कि.ग्रा. पोटाश (म्यूरेट ऑफ पोटाश के माध्यम से) दिया जा सकता है। जिन क्षेत्रों में गंधक की कमी हो वहाँ बुआई के समय गंधक भी देना चाहिए। यह उचित होगा कि उर्वरक देने से पहले मिट्टी की जांच करा लें और कमी होने पर उपयुक्त पोषक तत्वों को खेत में दें।

सिंचाई– प्रारंभ में मिट्टी में नमी और शीत ऋतु की वर्षा के आधार पर 1–2 सिंचाइयों की आवश्यकता होती है।

पहली सिंचाई फूल आने के समय और दूसरी सिंचाई फलियाँ बनने के समय करनी चाहिए। इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि हल्की सिंचाई करें और फसल में पानी ठहरा न रहे।

खतपतवार नियंत्रण – खरपतवार फसल के निमित्त पोषक तत्वों व जल को ग्रहण का फसल को कमजोर करते हैं और उपज के भारी हानि पहुंचाते हैं। फसल को बढ़वार की शुरू की अवस्था में खरपतवारों से अधिक हानि होती है। अगर इस दौरान खरपतवार खेत से नहीं निकाले गये तो फसल की उत्पादकता बुरी तरह से प्रभावित होती है। यदि खेत में चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार, जैसे–बथुआ, सेंजी, कृष्णनील, सतपती अधिक हों तो 4–5 लीटर स्टाम्प–30 (पैंडीमिथेलिन) 600–800 लीटर पानी में प्रति हेक्टेयर की दर से घोलकर बुआई के तुरंत बाद छिड़काव कर देना चाहिए। इससे काफी हद तक खरपतवारों को नियंत्रित किया जा सकता है।

रोग एवं कीट प्रबन्धन

रोग

रतुआ– इस रोग के कारण जमीन के ऊपर के पौधे के सभी अंगों पर हल्के से चमकदार पीले (हल्दी के रंग के) फफोले नजर आते हैं। पत्तियों की निचली सतह पर ये ज्यादा होते हैं। कई रोगी पत्तियाँ मुरझा कर गिर जाती है। अंत में पौधा सुखकर मर जाता है। रोग के प्रकोप से संकुचित व छोटे हो जाते हैं। अगेती फसल बोने से रोग का असर कम होता है। अवरोधी प्रजाति मालवीय मटर 15 प्रयोग करें।

आर्द्रजड़ गलन– इस रोग से प्रकोपित पौधों की निचली पत्तियाँ हल्के पीले रंग की हो जाती है। पत्तियाँ नीचे की ओर मुड़कर सुखी और पीली पड़ जाती है। तनों और जड़ों पर खुरदरे खुरंट से पड़ जाते हैं। यह रोग जड़–तंत्र सड़ा डालता है। यह रोग मृदा जनित है। रोग की बीजाणु वर्षों तक मिट्टी में जमे रहते हैं। हवा में 25 से 50: की अपेक्षित आर्द्रता और 22 से 32 डिग्री में सेल्सियस दिन का तापमान रोग पनपने में सहायक होता है। रोगग्राही फसल को उसी खेत में हर साल न उगाएँ। बीज का उपचार करने के लिए कार्बेन्ड़ाजिम 1 ग्राम. थीरम 2 ग्राम मात्रा एक किग्रा. बीज में मिलाएं। फसल की अगेती बुआई से बचें तथा सिंचाई हल्की करें।

चांदनी रोग– इस रोग से पौधों पर एक से.मी. व्यास के बड़े–बड़े गोल बादामी और गड्ढे वाले दाग पाये जाते हैं। इन दागों के चारों ओर गहरे रंग की किनारों भी होती है। तने पर घेरा बनाकर यह रोग पौधे के मार देता है। रोग मुक्त बीज ही बोयें 3 ग्राम थीरम दवा प्रति किग्रा. बीज की दर से मिलाकर बीजोपचार करें।

मटर की प्रमुख प्रजातियाँ – मटर की प्रमुख प्रजातियाँ और उनके विशिष्ट गुण निम्न हैं –

प्रजाति	उत्पादन क्षमता (किवंटल प्रति हे.)	संस्तुत क्षेत्र	विशेष गुण	पकने की अवधि
रचना	20-22	पूर्वी एवं पश्चिमी मैदानी क्षेत्र	सफेद फुफ्फु न्द अवरोधी	150-140
IPFD 10-12	20-25	पूर्वी मैदानी क्षेत्र	एवं पश्चिमी मैदानी क्षेत्र	120-140
मालवीय मटर-२	25-30	पूर्वी मैदानी क्षेत्र	सफेद फफूंद एवं रतुआ रोग अवरोधी	125-140
IPFD 12-02	20-25	मध्य क्षेत्र	सफेद फफूंद अवरोधी	100-125
पूसा प्रभात	18-20	पूर्वी मैदानी क्षेत्र	अल्पकालिक	100-110
पूसा पन्ना	18-20	पश्चिमी मैदानी क्षेत्र	अल्पकालिक	100-110

तुलासिता/रोमिल फफूंद– इस रोग के कारण पत्तियों की ऊपरी सतह एप पीला और ठीक उनके नीचे की सतह पर रुई जैसी फफूंद छा जाती है और रोगग्रस्त पौधों की बढ़वार रुक जाती है। पत्तियाँ समय से पहले ही झड़ जाती है। संक्रमण अधिक होने पर 0.2% मौन्कोजेब अथवा जिनेब का छिड़काव 400–800 लीटर पानी में प्रति हेक्टेयर की दर से करनी चाहिए।

पौध/मूल विगलन– जमीन के पास के हिस्से से नये फूटे क्षेत्रों पर इस रोग का प्रकोप होता है। तना बादामी रंग का होकर सिकुड़ जाता है, जिसकी वजह से पौधे मर जाते हैं। 3 ग्रा. थीरम् 1 ग्राम कार्बेन्डाजिम प्रति किग्रा. बीज की दर से बीजोपचार करें खेत का जल निकास ठीक रखें। संक्रमित खेती में अगेती बुआई न करें।

कीट

तना मक्खी – ये पूरे देश में पाई जाती है। पत्तियों, डंठलों अरु कोमल तनों में गांठें बनाकर मक्खी उनमें अंडे देती है। अंडों से निकली सड़ी पत्ती के डंठल या कोमल तनों मने सुरंग बनाकर अंदर–अंदर खाती है, जिससे नये पौधे कमजोर होकर झुक जाते हैं और पत्तियों पीली पड़ जाती है। पौधों की बढ़वार रुक जाती है। अंततः पौधे मर जाते हैं।

मांहू (एफिड) – कभी–कभी मांहू भी मटर की फसल को काफी नुकसान पहुंचाते हैं। इनके बच्चे और वयस्क दोनों ही पौधे का रस चूसने में सक्षम होते हैं। यह रस ही नहीं चूसते, बल्कि जहरीले तत्व भी छोड़ देते हैं। इसका भारी प्रकोप होने पर फलियाँ मुरझा जाती हैं। अधिक प्रकोप होने पर फलियाँ सुख जाती है। मांहू मटर एक वायरस (विषाणु) को फैलाने में भी उसके वाहक बनकर सहायता करती है।

मटर का अधफंदा (सेमीलूपर) – यह मटर का साधारण कीट है। इसकी गिड़ारें पत्तियाँ खाती है, पर कभी–कभी फूल और कोमल फलियों को भी खा जाती हैं। चलते समय यह शरीर के बीचोबीच फंदा सा बनाती है, इसलिए इसका नाम अधफंदा या सेमिलुपर पड़ा।

जहाँ पर तना मक्खी या पटसुरंगा या मांहू का प्रकोप हो, वहाँ 2% फोरेट से बीज उपचार करें या 1 किग्रा. फोरेट प्रति हेक्टेयर की दर से खेत की मिट्टी में बुआई के समय मिला दें। आवश्यकता होने पर पहली निकलने की अवस्था में फसल पर 0.03% डामेथोएट 400 से 500 लीटर पानी में मिलाकर घोल कर प्रति हेक्टेयर छिड़कें। जहाँ बुआई के समय मिट्टी में दवा न मिला पाए हों, वहाँ कीट के प्रकोप के अनुसार कीटनाशी दवा का छिड़काव करें।

कटीला फली भेदक (एटीपेला) – यह फली भेदक उत्तर भारत में अधिक पाया जाता है। अगेती किस्म के अपेक्षा पछेती प्रजातियों पर इसका अधिक प्रकोप होता है। इसी तरह देर से बोई गयी फसल में जल्दी बोई गयी फसल की तुलना में अधिक हानि होती है। फली और अंखुबड़ी के जोड़ वाली जगह पर या फली की सतह पर यह पंतगा अंडे देता है। अंडे से निकलते ही इसके नियंत्रण के लिए आवश्यक कदम उठाना चाहिए।

कटाई और मड़ाई – मटर की फसल सामन्यतः 130–150 दिनों में पकती है। इसकी कटाई दरांती से करनी चाहिए 5–7 दिन धुप में सुखाने के बाद बैलों से मड़ाई करनी चाहिए। साफ दानों को 3–4 दिन धूप में सुखाकर उनको भंडारण पात्रों (बिन) में करना चाहिये। भंडारण के दौरान कीटों से सुरक्षा के लिए एल्युमिनियम फोस्फाइड का उपयोग करें।

उपज– उत्तम कृषि कार्य प्रबन्धन से लगभग 18–30 किवंटल प्रति हेक्टेयर उपज प्राप्त की सकती है।

राजमा की वैज्ञानिक खेती

राजमा की खेती के लिए उचित जल निकासी वाली बलुई दोमट मिट्टी की आवश्यकता होती है राजमा की खेती में भूमि का P-H- मान 6.5 से 7.5 के मध्य होना चाहिए। यह एक आद्र और शुष्क जलवायु की फसल होती है, जिसमे जलवायु और तापमान अधिक अहमियत रखता है। भारत में राजमा की खेती खरीफ और रबी दोनों ही मौसम में की जाती है। राजमा के पौधों को अच्छे से वृद्धि करने के लिए सामान्य तापमान की आवश्यता होती है। अधिक गर्म और सर्द जलवायु इसके पौधों के लिए लाभदायक नहीं होती है। राजमे के बीजो को अंकुरण के समय 20 से 25 तापमान की आवश्यकता होती है, तथा अंकुरण के बाद 10 से 30 डिग्री के तापमान पर इसके पौधे अच्छे से विकास करते है। इसकी फसल के लिए न्यूनतम 10 तथा अधिकतम 30 डिग्री का तापमान होना चाहिए। इससे अधिक तापमान होने पर फूलो के झड़ने का खतरा रहता है।

राजमा के खेत की तैयारी और उर्वरक की मात्रा

राजमा के खेत को तैयार करने के लिए सबसे पहले उसकी अच्छी तरह से मिट्टी पलटने वाले हलो से गहरी जुताई कर देनी चाहिए, इससे पुरानी फसल के अवशेष पूरी तरह से नष्ट हो जाते है। खेत की जुताई के बाद उसे कुछ समय के लिए ऐसे ही खुला छोड़ दे। इसके बाद खेत में 10 से 15 गाड़ी पुरानी गोबर की खाद को डालकर दो से तीन तिरछी जुताई कर दे, इससे गोबर की खाद मिट्टी में अच्छी तरह से मिल जाती है। खाद को मिट्टी में मिलाने के बाद उसमे पानी लगाकर पलेव कर दे। पलेव के बड़ा जब खेत की मिट्टी सूखी दिखाई देने लगे तब उसमे रोटावेटर लगवा कर चला दे, इससे खेत की मिट्टी भुरभुरी हो जाएगी। इसके बाद खेत में पाटा लगाकर भूमि को समतल कर दिया जाता है। यदि आप इसकी खेती में रासायनिक खाद का इस्तेमाल करना चाहते है, तो उसके लिए आपको 120 KG डी.ए.पी. की मात्रा को प्रति हेक्टेयर के हिसाब से देना होता है। इसके बाद खेत की आखरी जुताई के समय उसमे 60 किलो नाइट्रोजन की मात्रा का छिड़काव करना होता है।

राजमा के बीजो की रोपाई का सही समय और तरीका

राजमा के बीजो की रोपाई को ड्रिल विधि द्वारा किया जाता है। इसके बीजो की रोपाई पंक्तियों में की जाती है, इसलिए बीजो की रोपाई से पहले खेत में एक से डेढ़ फीट की दूरी रखते हुए पंक्तियों को तैयार कर लिया जाता है। इसके बाद 10 से 15 CM की दूरी रखते हुए ड्रिल विधि द्वारा इसके बीजो की रोपाई कर दे। राजमा के बीजो की रोपाई से पहले उन्हें कार्बेन्डाजिम या गोमूत्र से उपचारित कर लेना चाहिए। इससे पौधों में रोग लगने का खतरा कम हो जाता है। भारत में राजमा की खेती अलग–अलग स्थान और जलवायु के हिसाब से की जाती है, पर्वतीय क्षेत्रों में इसकी खेती को खरीफ की फसल के समय करते है, तथा उत्तर पूर्वी क्षेत्रों में इसकी रोपाई नवंबर के माह में की जाती है।

राजमा के पौधों की सिंचाई

राजमा के पौधों को अधिक सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है। इसकी पहली सिंचाई को बीज रोपाई के तकरीबन 20 से 25 दिन बाद कर देना चाहिए। लेकिन जिन किसानो ने इसकी रोपाई सूखी भूमि में की है,उन्हें खेत में नमी को बनाये रखने के लिए बीज रोपाई से लेकर बीजो के अंकुरण तक हल्की सिंचाई करनी चाहिए। इसके पौधों को अधिकतम 4 से 5 सिंचाई की जरूरत होती है।

राजमा की फसल में खरपतवार नियंत्रण

इसकी फसल में खरपतवार नियंत्रण के लिए रासायनिक और प्राकृतिक दोनों ही तरीकों का इस्तेमाल किया जाता है। रासायनिक विधि द्वारा खरपतवार पर नियंत्रण पाने के लिए पेन्डीमेथलीन की उचित मात्रा का छिड़काव बीजो की रोपाई के तुरंत बाद करना होता है। इसके अलावा प्राकृतिक विधि द्वारा खरपतवार पर नियंत्रण पाने के लिए निराई – गुड़ाई की जाती है। इसकी पहली गुड़ाई को बीज रोपाई के तकरीबन 20 दिन बाद करना होता है। इसके बाद दूसरी गुड़ाई को भी 15 से 20 दिन बाद खरपतवार दिखाई देने पर कर देना चाहिए।

राजमा के पौधों में लगने वाले रोग एवं उनकी रोकथाम

राजमा के पौधों में अनेक प्रकार के रोग लगने का खतरा होता है, यदि इन रोगो से सही समय पर फसल को नहीं बचाया जाता है, तो यह पैदावार को अधिक प्रभावित कर सकती है। जिसकी जानकारी इस प्रकार है–

तना गलन रोग

यह एक सामान्य रोग होता है, जो अक्सर ही पौधों पर जलभराव की स्थिति में देखने को मिल जाता है। यह रोग पौध अंकुरण के समय ही दिखाई देता है। इस रोग से प्रभावित होने पर पौधों की पत्तियों पर पीले रंग का जलीय धब्बा बन जाता है। रोग के अधिक बढ़ जाने पर धब्बे का आकार भी विशाल हो जाता है, जिससे पौधे की पत्तिया पीली होकर गिर जाती है। इस रोग से बचाव के लिए कार्बेन्डाजिम की उचित मात्रा को सम्पूर्ण पौधों पर छिड़क देना चाहिए।

फली छेदक

फली छेदक रोग राजमा के पौधों पर कीट के रूप में देखने को मिलता है। इस कीट का लार्वा फलियों के बीजो को पूरा खा जाता है, जिससे पैदावार अधिक प्रभावित होती है। मोनोक्रोटोफास या एन.पी.वी. की उचित मात्रा का छिड़काव या पौधों पर नीम के तेल का छिड़काव कर इस रोग की रोकथाम की जा सकती है।

पर्ण सुरंगक

इस किस्म का रोग पौधों की पत्तियों को अधिक प्रभावित करता है। इस रोग के कीट पत्तियों को खाकर नष्ट कर देते है, जिससे पौधा अपना भोजन नहीं प्राप्त कर पाता है, और कुछ समय पश्चात ही सूखकर नष्ट हो जाता है। इमिडाक्लोरोप्रिड या डाईमिथोएट की उचित मात्रा का घोल बनाकर पौधों पर छिड़काव करने से इस रोग से बचा सकते है। इसके अलावा भी पौधों में कई तरह के रोग पाए जाते है, जो पौधों को हानि पहुँचाकर पैदावार को प्रभावित करते है, जैसे– माहू, कोणीय धब्बा आदि।

राजमा के फसल की कटाई पैदावार और कमाई

राजमा के पौधों को तैयार होने में तकरीबन 120 से 130 का समय लग जाता है, इसके बाद जब इसकी पत्तिया पीले रंग की दिखाई देने लगे, तब इसके पौधों को भूमि के पास से काट लेना चाहिए। पौधों की कटाई के बाद उन्हें अच्छी तरह से धूप में सूखा लिया जाता है। इसके बाद मशीन की सहायता से इसके बीजो को ठीक से निकाल ले। किसान भाई एक हेक्टेयर के खेत में तकरीबन 25 क्विंटल की पैदावार प्राप्त कर सकते है। राजमा का बाजारी भाव थोक के रूप में 8,000 रूपए प्रति क्विंटल होता है। जिस हिसाब से किसान भाई एक हेक्टेयर के खेत में डेढ़ लाख की कमाई कर अच्छा लाभ कमा सकते है।

प्रभेद	बुवाई का समय	पकने की अवधि (दिनों में)	औसत उपज (क्विंटल प्रति हेक्टेयर)	अभिव्यक्ति
66-197-3	10-20 अक्टूबर	120-125	14-16	तेल की मात्रा 43 प्रतिशत
राजेंद्र सरसों 1	10-20 अक्टूबर	95-100	15-16	तेल की मात्रा 46 प्रतिशत
स्वर्णा	10-20 अक्टूबर	110-120	14-16	तेल की मात्रा 47 प्रतिशत
पीताम्बरी	10-20 अक्टूबर	110-115	14-17	तेल की मात्रा 48 प्रतिशत

पौधों की बछनी जरूर करें। निकाई– गुराई बुआई के 20 दिन बाद करना चाहिए। रासायनिक खरपतवार प्रबंधन के लिए पेंडीमेथिलीन 30 ई.सी. 3 लीटर प्रति हेक्टेयर को 700–800 लीटर पानी में मिलाकर बुआई के तुरंत बाद मिट्टी में छिड़कना चाहिए।

कटाई एवं भण्डारण

जब 75% फलियां सुनहरी हो जाएं, उस समय फसल की कटाई कर उसे सुखा लें। देर से कटाई करने पर बीज झरने की संभावना रहती है। बीजों को 3–4 दिन तक धूप में सुखाकर भंडारित करें।

पीली सरसों

मिट्टी का चयन : पीली सरसों की खेती विभिन्न प्रकार की मिट्टी में की जा सकती है।

खेत की तैयारी : खेत की तैयारी के लिए 2–3 जुताई के बाद पाटा से खेत को समतल करना चाहिए।

बीज दर : 5 किग्रा/हेक्टेयर

बीज उपचार : बीज जनित रोग से बचाने के लिए फफूंदनाशकों से बीज–उपचार करना जरूरी है। बुआई से पहले बीजों को कार्बेन्डाजिम 50: डब्लू.पी. 2.5 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचारित करें।

बुआई की दूरी

पंक्ति से पंक्ति की दूरी 45 सेमी, पौधे से पौधे की दूरी 10–15 सेमी

खाद एवं उर्वरक प्रबंधन

8–10 टन कम्पोस्ट को आखिरी जुताई से पहले खेत में डालकर अच्छी तरह मिला देना चाहिए। सिंचित अवस्था के लिए उर्वरकों का प्रयोग 80:40:40 एन पी के किग्रा/हेक्टेयर तथा असिंचित क्षेत्र में 40:20:20 एन पी के किग्रा/हेक्टेयर के अनुपात में प्रयोग करना चाहिए। सिंचित अवस्था में नाइट्रोजन की आधी मात्रा, फास्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा बुआई के समय डालनी चाहिए और नाइट्रोजन की शेष मात्रा को फूल आने के समय टॉप ड्रेसिंग करना चाहिए। जबकी असिंचित अवस्था में नाइट्रोजन की, फास्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा बुआई के समय डालनी चाहिए। जिन खेतों की मिट्टी में जिंक की कमी है उनमें 25 किलोग्राम जिंक सल्फेट प्रति हेक्टेयर की दर से डालनी चाहिए।

सिंचाई प्रबंधन

अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए मिट्टी में पर्याप्त मात्रा में नमी मौजूद होनी चाहिए। सिंचित अवस्था में दो सिंचाई अवश्य करनी चाहिए। पहली सिंचाई फूल आने से पहले तथा दूसरी सिंचाई फली बनने के समय करनी चाहिए।

निकाई–गुराई और खरपतवार प्रबंधन

पीली सरसों में बुआई के 10–15 दिन के अंदर अतिरिक्त पौधों की बछनी जरूर करें। बुआई के 20 दिन बाद निकाई– गुराई करना चाहिए। रासायनिक खरपतवार प्रबंधन के लिए पेंडीमेथिलीन 30 ई.सी. 3 लीटर प्रति हेक्टेयर को 500–600 लीटर पानी में मिलाकर बुआई के तुरंत बाद मिट्टी में छिड़कना चाहिए।

कटाई एवं भण्डारण

जब 75% फलियां सुनहरी रंग हो जाएं, तो फसल काट कर सुखा लेना चाहिए। देर से कटाई करने पर बीज झरने की संभावना रहती है। इसके बाद बीज को अलग कर लें। बीजों को तीन से चार दिन तक सुखाकर टिन या मिट्टी के बखरीयों में भण्डारित करना चाहिए।

राई की वैज्ञानिक खेती

मिट्टी का चयन

राई की खेती सभी प्रकार की मिट्टी में की जा सकती है।

खेत की तैयारी

खेत की तैयारी के लिए 2–3 बार जुताई करके पाटा चला के से खेत को समतल कर लें।

बीज दर : 5 किग्रा/हेक्टेयर

बीज उपचार :

बीज जनित रोग से बचाने के लिए फफूंदनाशकों से बीज–उपचार करना जरूरी है। बुआई से पहले बीजों को कार्बेन्डाजिम 50% डब्लू.पी. 2.5 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचारित करें।

बुआई की दूरी

पंक्ति से पंक्ति की दूरी 30 सेमी, पौधे से पौधे की दूरी 15

सरसों एवं राई की वैज्ञानिक खेती

सरसों भारत की प्रमुख रबी तिलहन फसलें है। सरसों और रेपसीड को आम तौर राई और तोरिया (लाही) कहा जाता है। पूरे उत्तर भारत में इसके बीज का उपयोग अचार, मसाला, मानव उपभोग के लिए तेल का उपयोग खाना पकाने और तलने में किया जाता है। इसके खली का उपयोग पशुओं के चारे और खाद के रूप में किया जाता है। हरे तने और पत्तियाँ मवेशियों के लिए हरे चारे का अच्छा स्रोत हैं। युवा पौधों की पत्तियों का उपयोग हरी सब्जियों के रूप में किया जाता है, वे आहार में पर्याप्त सल्फर और खनिज प्रदान करते हैं। रेपसीड और सरसों में तेल की मात्रा 30 से 48 प्रतिशत तक होती है। फसल है उपोष्णकटिबंधीय और उष्णकटिबंधीय दोनों देशों में उगाया जाता है। बिहार में तोरिया और सरसों रबी मौसम में उगाई जाने वाली सबसे महत्वपूर्ण तिलहन फसल है। बिहार में तोरिया और सरसों का औसत क्षेत्र, उत्पादन और उत्पादकता 77,730 हजार हेक्टेयर, 95.13 टन/हेक्टेयर और 1224 किलोग्राम/हेक्टेयर है (स्रोत : भारत सरकार, कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय, कृषि एवं किसान कल्याण विभाग) । बिहार में तोरिया, पीली सरसों और राई की खेती मुख्य रूप से की जाती है।

तोरिया खेती निम्न तरीकों से की जा सकती है :—

मिट्टी

तोरिया की खेती विभिन्न प्रकार की मिट्टी जैसे बलुई दोमट से लेकर चिकनी दोमट मिट्टी तक, में की जा सकती है, लेकिन वे हल्की दोमट मिट्टी पर सबसे अच्छी तरह पनपते हैं।

खेत की तैयारी

खेत की तैयारी के लिए 2–3 जुताई के बाद पाटा से खेत को समतल करना चाहिए।

बीज दर : 5 किग्रा/हेक्टेयर

बीज उपचार : बीज को बीज जनित रोग से बचाने के लिए फफूंदनाशकों से बीज–उपचार करना जरूरी है। बुआई से पहले बीजों को कार्बेन्डाजिम 50: डब्लू.पी. 2.5 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचारित करें।

बुआई की दूरी

पंक्ति से पंक्ति की दूरी 30 सेमी, पौधे से पौधे की दूरी 10 सेमी

खाद एवं उर्वरक प्रबंधन

4–6 टन कम्पोस्ट को बुआई से 20–30 दिन पहले खेत में डालकर अच्छी तरह मिला देना चाहिए। नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटेशियम 60 किग्रा, 40 किग्रा और 40 किग्रा प्रति हेक्टेयर की दर से डालना चाहिए। नाइट्रोजन की आधी मात्रा, फास्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा बुआई के समय डालनी चाहिए। नाइट्रोजन की शेष मात्रा को फूल आने के समय टॉप ड्रेसिंग करना चाहिए। जिन खेतों की मिट्टी में जिंक की कमी है उनमें 25 किलोग्राम जिंक सल्फेट प्रति हेक्टेयर की दर से डालें।

सिंचाई प्रबंधन

अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए मिट्टी में पर्याप्त नमी बनाए रखना बहुत जरूरी है। इसलिए फूल आने से पहले सिंचाई करना महत्वपूर्ण है।

निकाई–गुराई और खरपतवार प्रबंधन

तोरिया में बुआई के 10–15 दिन के अंदर अतिरिक्त

उन्नत प्रभेद

प्रभेद	बुवाई का समय	पकने की अवधि (दिनों में)	औसत उपज (क्विंटल प्रति हेक्टेयर)	अभियुक्ति
1.आर. ए. यू. टी. एस. 17	25 सतम्बर - 10 अक्टूबर	90-95	12-15	तेल की मात्रा 43 प्रतिशत
2. पांचाली		95 -105	10-12	तेल की मात्रा 40%
3. पी. टी. 303		95-100	12-14	तेल की मात्रा 38%
. भवानी		90-95	10-12	तेल की मात्रा 41%

सेमी

खाद एवं उर्वरक प्रबंधन

8–10 टन कम्पोस्ट को आखिरी जुताई से पहले खेत में डालकर अच्छी तरह मिला देना चाहिए। सिंचित अवस्था के लिए उर्वरकों का प्रयोग 80:40:40 एन पी के किग्रा/हेक्टेयर तथा असिंचित क्षेत्र में 40:20:20 एन पी के किग्रा/हेक्टेयर के अनुपात में प्रयोग करना चाहिए। सिंचित अवस्था में नाइट्रोजन की आधी मात्रा, फास्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा बुआई के समय डालनी चाहिए और नाइट्रोजन की शेष मात्रा को फूल आने के समय टॉप ड्रेसिंग करना चाहिए। जब की असिंचित अवस्था में नाइट्रोजन की, फास्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा बुआई के समय डालनी चाहिए। जिन खेतों की मिट्टी में जिंक की कमी है उनमें 25 किलोग्राम जिंक सल्फेट प्रति हेक्टेयर की दर से डालनी चाहिए।

सिंचाई प्रबंधन

अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए मिट्टी में पर्याप्त मात्रा में नमी मौजूद होनी चाहिए। सिंचित अवस्था में दो सिंचाई अवश्य करनी चाहिए। पहली सिंचाई फूल आने से पहले तथा दूसरी सिंचाई फली बनने के समय करनी चाहिए।

निकाई–गुराई और खरपतवार प्रबंधन

पीली सरसों में बुआई के 10–15 दिन के अंदर अतिरिक्त पौधों की बछनी जरूर करें। बुआई के 20 दिन बाद निकाई– गुराई करना चाहिए। रासायनिक खरपतवार प्रबंधन के लिए पेंडीमेथिलीन 30 ई.सी. 3 लीटर प्रति हेक्टेयर को 500–600 लीटर पानी में मिलाकर बुआई के तुरंत बाद मिट्टी में छिड़कना चाहिए।

कटाई एवं भण्डारण

जब 75% फलियां सुनहरी रंग हो जाएं, तो फसल काट कर सुखा लेना चाहिए। देर से कटाई करने पर बीज झरने की संभावना रहती है। इसके बाद बीज को अलग कर लें। बीजों को तीन से चार दिन तक सुखाकर भण्डारित करना चाहिए।

सरसों का भंडारण

यदि संभव हो, तो अल्पावधि भंडारण (पांच महीने से कम) के लिए 10 प्रतिशत नमी से कम नमी वाली सरसों की कटाई करें, और लंबी अवधि (पांच महीने से अधिक) भंडारण के लिए नौ प्रतिशत नमी वाली सरसों की कटाई करें। वायु संचार से संग्रहीत बीज का तापमान कम हो जाएगा। यह फफूंद की वृद्धि को रोकेगा और खराब होने को कम करेगा। लंबे समय तक भंडारित सरसों को 18°C से कम तापमान पर रखना चाहिए। लंबे समय तक भंडारित सूखी सरसों को नौ प्रतिशत नमी से नीचे रखना चाहिए। सरसों के बीज को सुखाते समय, हवा का तापमान 65°C (150°F) और बीज का तापमान 45°C (113°F) से अधिक न रखें।

सरसों का विपणन

भारत में विपणन किए जाने वाले रेपसीड और सरसों के उत्पाद हैं सरसों का तेल, खली, सरसों के बीज और सरसों की चटनी। बढ़ती मांग के लिए सरसों के तेल, सरसों की चटनी और सरसों के खली की उचित पैकेजिंग और ब्रांडिंग होनी चाहिए। सरसों के बीज के विपणन के लिए ग्रेडिंग, सफाई, उचित पैकेजिंग और ब्रांडिंग महत्वपूर्ण है।

उन्नत प्रभेद

प्रभेद	बुवाई का समय	पकने की अवधि (दिनों में)	औसत उपज (क्विंटल प्रति हेक्टेयर)	अभियुक्ति
वरुण	15-25 अक्टूबर	135-140	20-22	तेल की मात्रा 42 प्रतिशत
पूसा बोल्ड	15-25 अक्टूबर	120-140	18-20	तेल की मात्रा 42 प्रतिशत
क्रांति	15-25 अक्टूबर	125-130	20-22	तेल की मात्रा 40 प्रतिशत
राजेंद्र राई पच्छेती	15 नवंबर-10 दिसंबर	105-115	12-14	तेल की मात्रा 41 प्रतिशत
राजेंद्र अनुकूल	15 नवंबर-10 दिसंबर	105-115	10-13	तेल की मात्रा 40 प्रतिशत
राजेंद्र सुफलाम	15 नवंबर-25 दिसंबर	105-115	12-15	तेल की मात्रा 40 प्रतिशत
सीएस 56	15 नवंबर-10 दिसंबर	113-147	15-17	तेल की मात्रा 40 प्रतिशत
एन आर सी एच बी 101	15 नवंबर-10 दिसंबर	105-135	13-15	तेल की मात्रा 42 प्रतिशत

तीसी की वैज्ञानिक खेती

महत्व

अलसी जिसे स्थानीय रूप से तीसी के नाम से भी जाना जाता है, बिहार में रबी मौसम के दौरान उगाई जाने वाली एक तिलहन फसल है, जो क्षेत्रफल के साथ–साथ उत्पादन में भी रेपसीड–सरसों के बाद महत्वपूर्ण है। पौधे के प्रत्येक भाग का व्यावसायिक उपयोग या तो सीधे या प्रसंस्करण के बाद किया जाता है। अलसी के बीजों में 33 से 47% तक तेल होता है, जिसमें से लगभग 20% का उपयोग किसानों के स्तर पर किया जाता है और बाकी तेल विभिन्न रूपों में उद्योगों में जाता है। यह तेल लिनोलेनिक एसिड से भरपूर है, जो सुखाने के लिए एक आदर्श तेल है। इसलिए इसका उपयोग पेंट, ऑयल क्लॉथ, वार्निश, पैड–स्याही, मुद्रित स्याही, लिनोलियम आदि के निर्माण में किया जाता है। ऑयल केक दुधारू मवेशियों और पोल्ट्री के लिए एक अच्छा चारा है और इसलिए इसकी कीमत रेपसीड–सरसों केक से 50% अधिक है। इसका स्वाद अच्छा होता है और इसमें 36% प्रोटीन होता है. इसका उपयोग जैविक खाद के रूप में भी किया जाता है, जिसमें लगभग 5% N, 1.4% P2O5 और 1.8% K2O होता है। अलसी की खेती विश्व स्तर पर इसके रेशों के लिए की जाती है और इसलिए इसे सन कहा जाता है। रेशों का उपयोग लिनेन के निर्माण में किया जाता है। तने से उच्च शक्ति और स्थायित्व वाले अच्छी गुणवत्ता वाले फाइबर का उत्पादन होता है, जो चमकदार होता है और ऊन, रेशम, कपास आदि के साथ बहुत अच्छी तरह से मिश्रित होता है। मजबूत सुतली, कैनवास, सूटिंग, शर्टिंग और रक्षा उद्देश्यों के लिए विभिन्न अपरिहार्य उत्पाद इससे निर्मित होते हैं। करेंसी नोटों के बराबर गुणवत्ता वाला कागज बनाने के लिए लकड़ी के पदार्थ और छोटे रेशों का उपयोग कच्चे गूदे के रूप में किया जा सकता है।

जलवायु संबंधी आवश्यकता

अलसी ठंडे मौसम की फसल है। फसल के वानस्पतिक विकास के दौरान तापमान मध्यम या ठंडा होना चाहिए। फूल आने की अवस्था के दौरान सूखे के साथ 32°C से ऊपर का तापमान बीज की उपज, बीज में तेल की मात्रा और तेल की गुणवत्ता को भी कम कर देता है। मध्यम तापमान (21–26oC) आदर्श हैं। फूल आने के समय, पाला फसल के लिए बहुत हानिकारक होता है। फसल कम वर्षा वाले क्षेत्रों के लिए उपयुक्त होती है और आम तौर पर वहां उगाई जाती है जहां औसत वार्षिक वर्षा 45 से 75 सेमी तक होती है।

भूमि की तैयारी

अलसी को लगभग सभी प्रकार की मिट्टी में उगाया जा सकता है, जहां पर्याप्त नमी उपलब्ध हो, लेकिन अधिक जल धारण क्षमता वाली भारी मिट्टी में इसकी खेती बेहतर होती है। यह मिट्टी के pH (5.0–7.0) की व्यापक रेंज के प्रति भी सहनशील है। हालाँकि, यह अच्छी जल निकास वाली दोमट से लेकर धरणयुक्त दोमट मिट्टी में सबसे अच्छी तरह उगता है। एक जुताई और उसके बाद दो से तीन जुताई करके खेत को अच्छी तरह से तैयार किया जाना चाहिए। अच्छे अंकुरण के लिए बुआई के समय पर्याप्त नमी सुनिश्चित करनी चाहिए।

खेती के लिए अनुशंसित किस्में

बिहार कृषि विश्वविद्यालय, सबौर द्वारा अलसी की चार प्रजातियाँ विकसित एवं जारी की गई हैं, जिनकी संक्षिप्त जानकारी नीचे दी गयी है।

सबौर तीसी-1

सबौर तीसी–1 अलसी की यूटेरा अवस्था के लिए उपयुक्त एक केंद्रीय किस्म है, जिसके पौधे की

औसत ऊंचाई 45 सेमी है, फूल नीले रंग और हल्के भूरे रंग के बीज हैं, औसत परिपक्वता अवधि 122 दिन है। इस किस्म की औसत बीज उपज 686 किलोग्राम/हेक्टेयर है, जिसमें औसत तेल सामग्री 33.3% है। यह किस्म बड फ्लाई जैसे कीट और अल्टरनेरिया ब्लाइट जैसी बीमारी के प्रति मध्यम प्रतिरोधी है। यह किस्म बिहार, झारखंड, उत्तर प्रदेश (बुंदेलखंड को छोड़कर), पश्चिम बंगाल, असम और नागालैंड जैसे छह राज्यों के लिए अनुशंसित है।

सबौर तीसी-2

सबौर तीसी–2 सिंचित अलसी के लिए उपयुक्त राज्य की किस्म है, जिसके पौधे की औसत ऊंचाई 59 सेमी, हल्के नीले रंग के फूल और भूरे रंग के बीज, औसत परिपक्वता अवधि 122 दिन है। इस किस्म की औसत बीज उपज 1883 किलोग्राम/हेक्टेयर है, जिसमें औसत तेल सामग्री 37.8% है। यह किस्म उकठा, रतुआ, खस्ता फफूंदी जैसी बीमारियों के लिए प्रतिरोधी है और अल्टरनेरिया ब्लाइट के लिए मध्यम प्रतिरोधी है। यह किस्म बड फ्लाई जैसे कीड़ों के प्रति मध्यम प्रतिरोधी है। यह किस्म बिहार राज्य में खेती के लिए अनुशंसित है।

सबौर तीसी-3

सबौर तीसी–3 अलसी की यूटेरा अवस्था के लिए उपयुक्त केंद्रीय किस्म है, पौधे की औसत ऊंचाई 55 सेमी, हल्के नीले रंग के फूल और भूरे रंग के बीज, औसत परिपक्वता अवधि 118 दिन है। इस किस्म की औसत बीज उपज 547 किलोग्राम/हेक्टेयर है, जिसमें औसत तेल सामग्री 38.2% है। यह किस्म उकठा और खस्ता फफूंदी जैसी बीमारियों के लिए प्रतिरोधी है और जंग के लिए मध्यम प्रतिरोधी है। यह किस्म बिहार, झारखंड, उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल, असम, नागालैंड, मध्य प्रदेश, राजस्थान, महाराष्ट्र, छत्तीसगढ़, ओडिशा और कर्नाटक जैसे बारह राज्यों के लिए अनुशंसित है।

सबौर तीसी-4

सबौर तीसी–4 सिंचित अलसी के लिए उपयुक्त एक केंद्रीय किस्म है, जिसके पौधे की औसत ऊंचाई 76 सेमी है, इसमें हल्के नीले रंग के फूल और भूरे रंग के बीज हैं, जिसकी औसत परिपक्वता 127 दिन है। इस किस्म की औसत बीज उपज 1523 किलोग्राम/हेक्टेयर है, जिसमें औसत तेल सामग्री 32.1% है। यह किस्म उकठा और खास्ता फफूंदी जैसी बीमारियों के लिए प्रतिरोधी है और अल्टरनेरिया ब्लाइट के लिए मध्यम रूप से प्रतिरोधी है। यह किस्म बिहार, झारखंड, उत्तर प्रदेश (बुंदेलखंड को छोड़कर), पश्चिम बंगाल, असम और नागालैंड जैसे छह राज्यों के लिए अनुशंसित है।

बीज एवं बुआई

बीज दरः एक हेक्टेयर भूमि के लिए फसल की इष्टतम बीज दर 20–25 किलोग्राम हेक्टेयर के बीच होती है।

बीज उपचारः फफूंद जनित रोगों से बचाव के लिए बुआई से पहले बीज उपचार थिरम या कैप्टान 3 ग्राम/किलो बीज या कार्बेन्डाजिम 2 ग्राम/किलो बीज की दर से करना चाहिए।

बुआई का समय– बुआई का समय अक्टूबर के आरंभ से नवंबर के मध्य तक भिन्न–भिन्न होता है। जल्दी बुआई करने से फसल को खस्ता फफूंदी, जंग और बडफ्लाई के खतरे से बचने में भी मदद मिलती है।

बुआई की दूरी– 25 सेमी की अंतर–पंक्ति दूरी और 5 सेमी की अंतर–पंक्ति दूरी आदर्श है। बीज को मिट्टी से 2–3 सेमी नीचे रखना चाहिए।

खाद एवं उर्वरक

भूमि की अंतिम तैयारी के समय खेत को 5–8 टन गोबर की खाद या कम्पोस्ट के साथ तैयार करना चाहिए। सिंचित फसल के लिए 80:30:20 किलोग्राम एनपीके किग्रा/हेक्टेयर की आवश्यकता होती है, जबकि वर्षा आधारित फसल के लिए एक हेक्टेयर भूमि के लिए 40:20:20 किलोग्राम एनपीके किग्रा/हेक्टेयर की आवश्यकता होती है। सिंचित अलसी में बुआई के समय फास्फोरस एवं पोटाश की पूरी खुराक और 50% नाइट्रोजन बेसल मात्रा का प्रयोग करना चाहिए। शेष 50% एन को पहली सिंचाई के बाद, बुआई के 30–35 दिन बाद टॉप ड्रेसिंग के रूप में लागू किया जाना चाहिए, जबकि वर्षा आधारित स्थिति में, उर्वरकों की पूरी मात्रा को बेसल अनुप्रयोग के रूप में लागू किया जाना चाहिए। सघन फसल प्रणालियों के तहत सिंचित फसल में, सल्फर और जिंक का 20 किलोग्राम/हेक्टेयर बेसल के रूप में उपयोग किया जाना चाहिए।

जल प्रबंधन

अलसी वर्षा आधारित क्षेत्रों की फसल है। हालाँकि, यह सिंचाई के प्रति अच्छी प्रतिक्रिया देता है। सिंचाई के लिए शाखाएँ निकलना, फूल आना और कैप्सूल बनने की अवस्थाएँ महत्वपूर्ण हैं। अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए दो सिंचाईयाँ पर्याप्त हैं। बुआई के 30 दिन बाद एक सिंचाई करनी चाहिए। यदि आवश्यक हो तो दूसरी सिंचाई फूल आने से ठीक पहले करनी चाहिए।

खरपतवार नियंत्रण

यह फसल आमतौर पर बौने कद की होती है, और इसलिए इसे खरपतवारों से गंभीर प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ता है। बुआई के बाद शुरुआती 3–6 सप्ताह फसल–खरपतवार प्रतिस्पर्धा का महत्वपूर्ण समय होता है। अनियंत्रित खरपतवार उपज को 25–40% तक कम कर सकते हैं। मुख्य रूप से पोषक तत्वों के बाद नमी के लिए प्रतिस्पर्धा के कारण वर्षा आधारित और यूटेरा फसल प्रणालियों में नुकसान अधिक होता है। अलसी में प्रमुख खरपतवार वनस्पतियों में दूब घास, क्रैबघास, गेहूं का मामा आदि घास और मोथा जैसे सेज शामिल हैं। चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार जो आमतौर पर अलसी में समस्या पैदा करते हैं, उनमें बथुआ, गोयालो, रुमेक्स रेट्रोफ्लेक्स, रुमेक्स डेंटेटस, पॉलीगोनम प्लेबेजियम, एनागालिस अर्वेन्सिस, कॉन्वोल्वुलस अर्वेन्सिस, मेलिलोटस इंडिका, मेलिलोटस अल्बा, ऑक्सालिस डेंटाटा, विसियाहिरसुटा, फिजलिस मिनिमा, सोलानुमनिग्रम, मेडिकागोडेंटिकुलाटा, ब्लूमियालेसेरा आदि शामिल हैं। फसल अमरबेल द्वारा भी परजीवी बनाया गया है, जिससे उपज को भारी नुकसान हुआ।

बुआई के 30 दिन और 45 दिन बाद दो बार हाथ से निराई–गुड़ाई करनी चाहिए या 1 किलोग्राम की दर से पेंडिमिथालिन का उद्भव पूर्व प्रयोग करना चाहिए। खरपतवारों को नियंत्रित करने के लिए ए.आई.एच.ए.–1 या उभरने के बाद 1 किग्रा.ए.आई./हेक्टेयर की दर से आइसोप्रोट्यूरॉन का प्रयोग साथ ही एक हाथ से निराई–गुड़ाई करनी चाहिए।

पेयरा या यूटेरा फसल

यह प्रणाली चावल के खेतों में, जहां जुताई एक समस्या है, बची हुई नमी के कुशल उपयोग के लिए प्रचलन में है। इस प्रथा में, जब चावल की फसल डोऊ अवस्था में होती है, तो अलसी को खड़े चावल के खेतों में फैलाया जाता है। अधिक उत्पादकता और अच्छी गुणवत्ता वाले तेल के उद्देश्य से उन्नत किस्में उगाई जानी चाहिए। अच्छी जल धारण क्षमता वाली भारी बनावट वाली मिट्टी इस प्रणाली के लिए आदर्श होती है। चावल में फॉस्फेट उर्वरकों के साथ पर्याप्त मात्रा में एफ वाई एम या हरी खाद डालनी चाहिए। अलसी बोने से 2 या 3 दिन पहले 35–40 किलोग्राम/हेक्टेयर की बीज दर का उपयोग करके 40 किलोग्राम नाइट्रोजन/हेक्टेयर की खुराक डालनी चाहिए। हाथ से निराई–गुड़ाई एक या दो बार करनी चाहिए।

कीट एवं उनका प्रबंधन

अलसी की कली मक्खी/गैल–मिज कली मक्खी की परिपक्व अवस्था एक छोटी नारंगी मक्खी होती है। पूर्ण विकसित होने पर कीड़ा गहरे गुलाबी रंग का दिखता है और इसकी लंबाई लगभग 2 मिमी होती है और इसके विकास की अवधि लगभग 4–10 दिन होती है। पूर्ण विकसित कीड़े जमीन पर गिर जाते हैं और मिट्टी में कोकून तैयार करते हैं। प्यूपल अवधि लगभग 4–9 दिनों तक रहती है। क्षतिग्रस्त कली का पता लगाना बहुत मुश्किल है क्योंकि यह क्षति छोटे कीड़ों द्वारा कलियों और फूलों को खाने के कारण होती है। हालाँकि, क्षतिग्रस्त कलियों से कोई फली–निर्माण नहीं होता है।

प्रबंधन : समय पर बुआई करने से कीट से होने वाले नुकसान से बचा जा सकता है। इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एसएल / 1.0 मिली/3 लीटर पानी या फिप्रोनिल 5 एससी / 1.0 मिली/लीटर पानी का छिड़काव करने से घटना कम हो सकती है।

वयस्क कली मक्खी, कली मक्खी के कारण अलसी की कलियाँ संक्रमित हो गईं

फली छेदक/फ्लैक्स बॉलवॉर्म

फली छेदक या फ्लैक्स बॉलवर्म चढ़ने वाले कटवर्म की तरह होता है। इसमें कई अन्य मेजबान पौधे हैं। पतंगे अपने अंडे खुले फूलों में जमा करते हैं और युवा लार्वा बीजकोष के भीतर विकसित हो रहे फूलों और बीजों को खाते हैं। पुराने हरे और सफेद धारीदार कीड़े बीजकोषों को छोड़ देते हैं और बाहर से अन्य बीजकोषों को खाकर अपना विकास पूरा करते हैं।

प्रबंधन : कीटों का शीघ्र पता लगाने के लिए 5 ट्रैप/हेक्टेयर की दर से फेरोमोन ट्रैप की स्थापना और इसलिए हेलिकॉवरपार्मिगेरा के वयस्कों का बड़े पैमाने पर विनाश। हेलिकोवर्पा लार्वा पर शिकार करने के लिए ब्लैक ड्रोंगो पक्षी को प्रोत्साहित करने के लिए 50/हेक्टेयर की दर से पक्षियों के बैठने के स्थान का निर्माण। कीट आबादी को नष्ट करने के लिए 1 जाल/2 हेक्टेयर की दर से प्रकाश जाल की स्थापना। एनपीवी 250 एलई / 2.0 मिलीध्लीटर का छिड़काव। पानी या इमामेक्टिन बेंजोएट 5 एसजी / 250 ग्राम /हेक्टेयर या स्पिनोसैड 45एससी / 200 मिली/हेक्टेयर।

रोग और उनका प्रबंधन

अलसी के प्रमुख रोग रतुआ, झुलसा, उकठा तथा चूर्णी फफूंदी हैं जो आर्थिक हानि पहुंचाते हैं। महत्वपूर्ण रोगों की संक्षिप्त जानकारी इस प्रकार है :

अलसी का रतुआ रोग

कारण जीव : मेलमप्सोरा लिनी

लक्षण : ठंडी रातों के दौरान उच्च आर्द्रता और दिन का गर्म तापमान इस बीमारी को बढ़ावा देता है। इसे पत्तियों और तनों पर लाल, उभरे हुए धब्बों से आसानी से पहचाना जा सकता है। सीजन की शुरुआत में, पत्तियों पर गोल चमकीले नारंगी रंग के दाने देखे जा सकते हैं। बाद में, फुंसियाँ काली हो जाती हैं, जिससे पत्ते झड़ जाते हैं। जंग रोगजनक अलसी के भूसे में सर्दियों में रहता है, जिससे बीजाणु उत्पन्न होते हैं और प्राथमिक संक्रमण का कारण बनते हैं।

पत्ती पर जंग के लक्षण

प्रबंधन : चूंकि जंग के बीजाणु बीज पर होते हैं, ऑक्सीकाबोक्सिन/कार्बेन्डाजिम/2 ग्राम/किग्रा बीज के साथ रासायनिक बीज उपचार इनोकुलम के प्रसार को कम करने में

सहायक होगा। अत्यधिक नाइट्रोजनयुक्त उर्वरक फसल की झाड़ियों के विकास को बढ़ावा देते हैं जो पौधे को पहले ही नष्ट कर देते हैं। इस बीमारी से बचना चाहिए और इसलिए उर्वरकों की केवल अनुशंसित खुराक ही लगानी चाहिए। 8–15 दिनों के अंतराल पर 0.20% मैनकोजेब का प्रयोग।

अल्टरनेरिया ब्लाइट

यह अलसी का एक महत्वपूर्ण रोग है और इससे उपज में 28–60% की वार्षिक हानि होती है।

कारण जीव : अल्टरनेरियलिनी

अनुकूल परिस्थितियाँ: उच्च नमी और गर्म तापमान।

लक्षण: कवक पौधों के सभी हवाई भागों, विशेषकर कलियों, फूलों और ऊपरी पत्तियों पर हमला करता है। पहला लक्षण दिन के दौरान फूलों का न खिलना है। कैलीक्स के आधार के पास सूक्ष्म, गहरे भूरे रंग के धब्बे दिखाई देते हैं, जिस पर वे धीरे–धीरे बढ़ते हैं, डंठल में गुजरते हैं और पुष्पक्रम के क्षय का कारण बनते हैं। नई पत्तियों पर आधार से आक्रमण हुआ, जब रोगजनक तने में चला गया, जिससे मुरझाहट और विकृति पैदा हुई। पुरानी पत्तियाँ आमतौर पर सिरों पर संक्रमित होती थीं। अत्यधिक आर्द्र परिस्थितियों से जुड़े गंभीर मामलों में, पूरा पौधा मुरझा जाता है। यदि फलियाँ संक्रमण के समय बनीं तो उन पर फूलों की तरह ही आक्रमण हुआ।

पत्तियों, तनों और कलियों पर अल्टरनेरिया ब्लाइट के लक्षण

प्रबंधन : अलसी की अनुशंसित किस्में उगायें। उकठा रोग और अल्टरनेरिया ब्लाइट के प्रबंधन के लिए कार्बोक्सिन थीरम / 2 ग्राम/किग्रा बीज के साथ बीज उपचार करें। खेत की स्थिति के तहत अल्टरनेरिएबलाइट के प्रबंधन के लिए 8 –15 दिनों के अंतराल पर इप्रोडियोन / 0.20% या मैंकोजेब / 0.20% का छिड़काव करें।

विल्ट

यह एक बीज जनित, मिट्टी जनित और संवहनी रोग है और इससे अलसी की बीज उपज में भारी नुकसान होता है।

कारण जीव : फ्यूसेरियम ऑक्सीस्पोरमफ.स्प. लिनी।

अनुकूल परिस्थितियाँ: उच्च नमी और गर्म तापमान

अलसी के मुरझाने के लक्षण

लक्षण :

शुरुआती संक्रमण से अलसी के पौधे उगने के तुरंत बाद मर सकते हैं, जबकि देर से संक्रमण से पत्तियां पीली और मुरझा जाती हैं, जिसके बाद पौधे भूरे हो जाते हैं और मर जाते हैं। मृत पौधों की जड़ें राख जैसी धूसर हो जाती हैं। मुरझाए हुए पौधों के शीर्ष अक्सर नीचे की ओर मुड़ जाते हैं और 'शेफर्ड क्रूक' का निर्माण करते हैं। प्रभावित पौधे आमतौर पर टुकड़ों में होते हैं, लेकिन पूरे खेत में बिखरे भी हो सकते हैं। कवक मिट्टी में बना रहता है, क्योंकि माइसेलिया और बीजाणु मिट्टी में अलसी और अन्य कार्बनिक पदार्थों के मलबे में कई वर्षों तक जीवित रहते हैं।

प्रबंधन : अलसी की फसलों के बीच कम से कम तीन साल का फसल चक्र मिट्टी में इनोकुलम के निम्न स्तर को बनाए रखने में मदद करता है। उकठा रोग और अल्टरनेरिया ब्लाइट के प्रबंधन के लिए कार्बोक्सिन, थीरम / 2 ग्राम/किग्रा बीज के साथ बीज उपचार करें। खेत की स्थिति के तहत रोग के प्रबंधन के लिए गर्मियों में गहरी जुताई और मिट्टी में ट्राइकोडर्मा विरिडे / 4 किग्रा/हेक्टेयर का प्रयोग करें।

पाउडर रूपी फफूंद

यह एक आम, व्यापक और आसानी से पहचाना जाने वाला पर्ण रोग है और अलसी के बढ़ते क्षेत्रों में सबसे आम है। यह अलसी के प्रमुख सीमित कारकों में से एक है। यह रोग पौधे के सभी हवाई भागों पर दिखाई देता है, जिससे अंततः उपज में 60% तक की भारी हानि होती है।

कारण जीवः ओइडियम लिनी

अनुकूल परिस्थितियाँ : शुष्क और गर्म तापमान।

लक्षण : माइसेलिया का सफेद पाउडर जैसा द्रव्यमान जो छोटी–छोटी फुंसियों के रूप में शुरू होता है और पूरी पत्ती की सतह पर फैल जाता है। गंभीर रूप से संक्रमित पत्तियां सूखकर मर जाती हैं। प्रारंभिक संक्रमण से पौधा नष्ट हो जाता है और अधिक पैदावार कम हो जाती है।

खास्ता फफूंदी के लक्षण

प्रबंधन : रोग के प्रबंधन के लिए 15 दिनों के अंतराल पर वेटटेबल सल्फर / 0.25% का प्रयोग करें।

कटाई एवं थ्रेसिंग

फसल को पकने में लगभग 120–135 दिन लगते हैं। परिपक्व होने पर पत्तियाँ सूख जाती हैं, कैप्सूल भूरे रंग का हो जाता है तथा बीज चमकदार हो जाता है। कटाई के बाद पौधों को बंडल बनाकर खलिहान में 4–5 दिन तक सूखने के लिए छोड़ दें। थ्रेसिंग पौधे को डंडों से पीटकर या ट्रैक्टर से रौंदकर की जाती है। बीजों को 10% से कम नमी वाले सूखे स्थान पर

प्रकाशन
बिहार कृषि प्रबंधन एवं प्रसार प्रशिक्षण संस्थान (बामेती)
पोस्टः बिहार वेटनरी कॉलेज, जगदेव पथ, पटना-800 014
Website: www.bameti.org, e-mail : bameti.bihar@gmail.com